समयसार, गाथा ५८, ५९, ६० है न, उनका अन्तिम भाग है। **यहाँ शुद्धनय की दृष्टि से कथन है...** शुद्धनय कहो, निश्चयनय कहो या शुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहो, उसका यह कथन है। **इसलिए ऐसा सिद्ध किया है कि जो यह समस्त भाव सिद्धान्त में जीव के कहे गये हैं,...** शुभभाव, अशुभभाव, गुणस्थान, जीवस्थान आदि भेद, जीव के कहे, वे

व्यवहार से कहे गये हैं। पर्याय में कथंचित् हैं, इसलिए कहे हैं। **यदि निमित्तनैमित्तिकभाव की दृष्टि से देखा जाये...** अर्थात् कर्म निमित्त है और भेद पड़ता है आत्मा की पर्याय में रागादि, गुणस्थान आदि, उस **निमित्तनैमित्तिकभाव की दृष्टि से देखा जाये तो वह व्यवहार कथंचित् सत्यार्थ भी कहा जा सकता है।** क्योंकि पर्याय में गुणस्थान भेद, शुभरागादि हैं, उस निमित्तनैमित्तिक के सम्बन्ध से कहें तो नैमित्तिक में वह पर्याय है व्यवहार से... आहाहा! ऐसा है।

कथंचित् सत्यार्थ अर्थात् पर्याय में है - ऐसा भी यथार्थ है। **यदि सर्वथा असत्यार्थ ही कहा जाये...** ये गुणस्थान भेद, शुभरागादि आत्मा में बिल्कुल नहीं हैं-ऐसा निश्चय से कहा, ऐसा कहने में आवे, **तो सर्व व्यवहार का लोप हो जायेगा...** तो पर्याय में गुणस्थान भेद, शुभ-अशुभभाव, संयमलब्धिस्थान हैं, वे सर्वथा लोप हो जायेंगे। यदि सर्वथा नहीं ऐसा कहो तो (सर्वथा लोप हो जायेगा)। समझ में आया यह?

मुमुक्षु : व्यवहार का लोप होगा तो फिर निश्चय होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह यहाँ कहाँ बात है! यहाँ तो पर्याय में व्यवहार है या नहीं, इतनी बात है। उसके आश्रय से समकित होता है या नहीं, यह प्रश्न यहाँ नहीं है। यहाँ तो इसकी पर्याय में... द्रव्य की दृष्टि से उन्हें पर्याय में तादात्म्यसम्बन्ध नहीं, गुणस्थान का शुभ-अशुभभाव का तादात्म्यसम्बन्ध नहीं, इसलिए उन्हें पुद्गल का कहा है। आहाहा! पुद्गल के साथ उन्हें नित्य तादात्म्यसम्बन्ध है, इसलिए उन्हें पुद्गल का कहा। आत्मा ज्ञायकस्वभाव के साथ आत्मा को तादात्म्यसम्बन्ध है, वैसे इन भावों के साथ तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है, पर्याय में एक समय का सम्बन्ध है। आहाहा! आहाहा! ये पर्याय में हैं ही नहीं, ऐसा हो तो सर्वथा लोप हो जाता है, कि व्यवहार है ही नहीं... यहाँ व्यवहार से निश्चय होता है, यह यहाँ प्रश्न नहीं। यहाँ तो व्यवहार-पर्याय में गुणस्थान भेद, रागादि हैं। पहले निषेध किया था कि निश्चयनय से ये आत्मा के नहीं हैं, ये तो पुद्गल के हैं। आहाहा! समझ में आया?

वस्तु का तद् (रूप) द्रव्यस्वभाव, ज्ञान-आनन्द आदि जो तादात्म्यसम्बन्ध है, उस प्रकार से इस विकार को और वर्तमान भेद को तादात्म्य / तद् (रूप) सम्बन्ध उष्णता

और अग्नि की भाँति नहीं। उष्णता को और अग्नि को तद्रूप सम्बन्ध-तादात्म्यसम्बन्ध है, वैसे इन पुण्य-पाप के भाव, गुणस्थान, जीवस्थान आदि को आत्मा के साथ कायम, कायम तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। परन्तु पर्याय में नहीं, ऐसा जो कहा, पुद्गल का कहा, वह निश्चय की अपेक्षा से तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है, इसलिए (कहा है) परन्तु इसकी पर्याय में व्यवहारनय से वे नहीं, ऐसा नहीं है। व्यवहारनय से, हों! निश्चयनय से तो तादात्म्यसम्बन्ध नहीं, इसलिए नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें अब! आहाहा!

परन्तु व्यवहारनय से इसकी पर्याय में शुभ-अशुभभाव, ये लब्धिस्थान, जीवस्थान, गुणस्थान पर्याय में है। द्रव्य में नहीं परन्तु पर्यायदृष्टि से पर्याय में है। यदि पर्याय में नहीं तो सर्व व्यवहार का लोप... व्यवहार अर्थात् संसार, रागादिभाव हैं ही नहीं -ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा। यहाँ शुद्धनय की दृष्टि कही है। शुद्धनय कहो या निश्चय कहो, वापस ऐसा नहीं कि यहाँ शुद्धनय कहने का आशय त्रिकाली शुद्ध है, उसे देखनेवाली दृष्टि वह शुद्धनय है ऐसा। बाकी उसे ही यहाँ निश्चयनय कहते हैं। आहाहा! उसमें आता है न, ११-१२ **'जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।'** ऐसा आया वहाँ निश्चय शब्द आया है, वह तो यहाँ त्रिकाली ज्ञायकभाव शुद्धस्वभाव... आहाहा! दोपहर को आया था न, पूर्ण गुण से अभेद पूर्ण आत्मद्रव्य, वह चीज़ / वस्तु है, निश्चय से वह है और इसलिए उसकी दृष्टि करने से-उसका आश्रय लेने से पर्याय की पूर्णता प्रगट होती है। आहाहा! कल दोपहर को (तुम) नहीं थे, बहुत सरस आया था, बहुत, पूरा १७६। पूर्ण गुणों से अभेद,... गुण हैं वे अपूर्ण नहीं होते। चाहे तो सैंतालीस शक्ति कही-जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, वे अनन्त गुण पूर्ण हैं, वे अनन्त गुण जो पूर्ण हैं, उनसे अभेद ऐसा जो आत्मद्रव्य है, उस पर दृष्टि देने से पर्याय में पूर्ण पर्याय की प्राप्ति होती है। आहाहा!

बहुत सादी भाषा! 'पूर्णोभवन्ति जीवन्ति भवन्ति' आता है न? पीछे नहीं! 'पूर्णो भवन जीवति' यह आज सबेरे श्लोक निकाला था। द्रव्य का अस्तित्व है न? चौदह बोल, पहले तत्-अतत्, एक-अनेक, सत्-असत्, नित्य-अनित्य, स्व से है और पर से नहीं। पहले बोल में 'पूर्णो भवन्ति'- पूर्ण होकर वह जीता है-रहता है। वह पर्याय में लिया है वहाँ... आहाहा! पाँचवाँ श्लोक है। चौदह-चौदह बोल का (श्लोक है)। सबेरे निकाला

था, उस पूर्ण के साथ मिलान करने, गहराई के साथ मिलान करने वह निकाला था कल। विशति, आहाहा!

यहाँ भगवान आत्मा वस्तुदृष्टि से पूर्ण गुण अनन्त... अनन्त... अनन्त... हैं परन्तु वे सब पूर्ण हैं। पर्याय में हीनाधिकता, वह तो व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! पूर्ण गुणों से अभेद, पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करने से पर्याय में पूर्णता प्रगट होती है। आहाहा! यह निश्चय से कहा था, परन्तु इसकी पर्याय में राग-द्वेष और गुणस्थान आदि नहीं - ऐसा कहा, वह तो शुद्धनय से-निश्चयनय से कहा परन्तु पर्याय में है। अनित्य सम्बन्ध इसे एक समय का है। आहाहा! वह तो आया, न उस बन्ध का-पन्थ का एक समय की अवस्था से, आहाहा! इससे व्यवहार का निषेध करे कि, पर्याय में है ही नहीं... कथंचित् सत्यार्थ है, पर्याय की अपेक्षा से उसमें है, ऐसी बात है। त्रिकाल की अपेक्षा से उसमें नहीं। आहाहा!

सर्व व्यवहार का लोप होने से परमार्थ का भी लोप हो जायेगा। यहाँ ऐसा नहीं कहना है कि जो व्यवहार है तो उससे निश्चय होता है। यहाँ यह बात नहीं है। व्यवहार-शुभराग है, वह तो निश्चय से तो पुद्गल का परिणाम कहा और पर्याय में है, इसके राग में, वह तो है, इतनी बात सिद्ध करनी है परन्तु राग से आत्म (दर्शन)-सम्यग्दर्शन होता है, यह यहाँ प्रश्न नहीं है। समझ में आया? आहाहा! **इसलिए जिनेन्द्रदेव का उपदेश स्याद्वादरूप समझना ही सम्यक्ज्ञान है,...** समझना ही सम्यक्ज्ञान है। अर्थात्? पर्याय में... यह चौदहवीं गाथा के भावार्थ में भरा है, चौदहवीं गाथा के (भावार्थ में) कि पर्याय में है, ऐसा इसे ज्ञान तो रखना चाहिए। फिर द्रव्यार्थिकनय से वे अन्दर में नहीं परन्तु पर्याय में विकार है, ऐसा ज्ञान तो इसे लक्ष्य में रखना चाहिए। रखकर स्व का आश्रय लेना। '**जो पस्सदि अप्पाणं**' १४ गाथा का अर्थ है न? आहा! पण्डित जयचन्दजी ने बहुत अच्छा अर्थ किया है। ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

यह तो ४६ गाथा में आ गया कि यदि पर्याय में भी राग-द्वेष-मोह नहीं तो फिर राग-द्वेष-मोह को छेदने का-मोक्ष का उपाय भी नहीं। समझ में आया? क्योंकि यह भी व्यवहार है। राग-द्वेष और मोह द्रव्यस्वभाव में नहीं, परन्तु यदि पर्याय में भी नहीं, तब तो राग-द्वेषरहित है, तो उसे राग-द्वेष-मोहरहित करना रहता नहीं। पर्याय में राग-द्वेष-

मोहसहित है, आहाहा! पर्याय में बन्धभावसहित है, इसलिए इसे स्व के आश्रय से मोक्ष का मार्ग प्रगट करके... यह मोक्ष उपाय भी व्यवहार है। स्व के आश्रय से पर्याय प्रगटे, वह भी एक व्यवहार है। आहाहा! तो वह मोक्ष का उपाय भी सिद्ध नहीं होता। यदि आत्मा को ऐसा कह दे कि उसे कोई राग-द्वेष है ही नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि उसके त्रिकाल सम्बन्ध में नहीं है। भगवान आत्मा वस्तु से चैतन्यरत्न प्रभु, कि उसके अनन्त गुण जो पूर्ण हैं, उसमें वे नहीं-राग-द्वेष, पुण्य-पाप, संसारभाव उसमें नहीं। इसलिए तो उन्हें पुद्गल के-पुद्गल के साथ तादात्म्यसम्बन्ध कहकर पुद्गल के हैं, ऐसा कहा; शुभाशुभ, गुणस्थान भेद पुद्गल के-जड़ के परिणाम जड़ कहे परन्तु उन्हें सर्वथा आत्मा के साथ अनित्य भी सम्बन्ध नहीं,.. आहाहा! अत्यन्त पुद्गल के साथ ही सम्बन्ध है और पुद्गल के ही हैं, ऐसा कह दे तो पर्याय में उसमें राग-द्वेष विकार है, वह पुद्गल में सिद्ध हो और अपने में है, ऐसा सिद्ध नहीं हो तो व्यवहार से है और इसलिए उन्हें छेदने का उपाय भी है। आहाहा! ऐसी बात है।

ऐसे व्यवहार... स्याद्वादी... निश्चयस्वभाव भगवान आत्मा में वह विकार नहीं है, इसलिए उस विकार को पुद्गल कह दिया, परन्तु उसकी पर्याय में है, कथंचित् सत्य है। है, है इतनी बात। ऐसा स्याद्वाद का कथन समझकर सम्यग्ज्ञान करना चाहिए। आहाहा! परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आत्मा में वह व्यवहार रागादि है; इसलिए उससे आत्मा का कल्याण होता है और सम्यग्दर्शन होता है। यह बात यहाँ नहीं है। वे 'हैं' इतनी बात सिद्ध करनी है। द्रव्य में नहीं, पर्याय में हैं, व्यवहारनय से (हैं) - इतनी बात सिद्ध करनी है, परन्तु ऐसा कहकर यह कहे कि यदि व्यवहार भी सत् है, इसलिए व्यवहार से भी सम्यग्दर्शन, आत्मा का अवलम्बन होता है (तो) यह बात झूठी है। आहाहा!

अरे रे! जिन्हें यहाँ पुद्गल का परिणाम (कहा) शुभराग—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा को तो यहाँ पुद्गल का परिणाम कहा, पुद्गल कहा; अब वह पुद्गल, आत्मा के स्वरूप में / साधन में सहायक हो ? आहाहा! परन्तु उसे वह साधन-मददगार नहीं होता किन्तु फिर भी वह पर्याय में नहीं है, ऐसा (नहीं है)। यहाँ सिद्ध करना है कि पर्याय में नहीं ऐसा नहीं। है; बस इतना ही। आहाहा! अरे! अनन्त काल से भगवान अन्दर पूर्णानन्द प्रभु अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुणों से पूर्ण भरपूर प्रभु अभेदवस्तु... आहाहा! उसकी इसने

दृष्टि नहीं की, इसलिए दृष्टि कराने को पर्यायदृष्टि को उठाकर त्रिकाल ज्ञायकभाव का- अनन्त गुण का पूर्णरूप ऐसा अभेदद्रव्य, उसकी दृष्टि कराने को, पर्याय में भी इसके नहीं, ऐसा कहने में आया था। आहाहा! **सर्वथा एकान्त वह मिथ्यात्व है।** पर्याय में भी रागादि नहीं, ऐसा माने तब तो मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं।

आहाहा! ऐसा अटपटा कथन! तब अब इसका अर्थ ऐसा हो गया कि व्यवहार (से) पर्याय में हैं रागादि; हैं, इसलिए उनसे सम्यग्दर्शन होता है - ऐसा नहीं है। उनका अभाव करके त्रिकाली ज्ञायकभाव के सद्भाव में अवलम्बन ले तो उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! ऐसी बातें अब! पण्डितजी! लोगों को निवृत्ति नहीं मिलती, अकेले संसार के धन्धे में-पाप में रचे-पचे, अब उसमें ऐसी बातें, इसे सुनने को नहीं मिलती। अरे! क्या करे यह! आहाहा! नटुभाई है न, ये सब तुम्हारे वकील होते हैं तो भी ऐसी बातें नहीं होती वहाँ, सब वहाँ गप्प मारते हैं। आहाहा!

आहाहा! वस्तु भगवान आत्मा... ऐसा तो उस १८९ गाथा प्रवचनसार में कहा न, शुद्धनय से रागादि जीव के हैं - ऐसा वहाँ कहा है। यहाँ व्यवहारनय से कहा है। आहाहा! वे शुद्धनय से-निश्चय से इसके जीव में राग है - ऐसा कहा है। वह ज्ञेय अधिकार है न? ज्ञेय का ज्ञान आत्मा की पर्याय में वह है न? राग-द्वेष, पुण्य-पाप, इसकी पर्याय में है न? या पर में है और पर से है? आहाहा! इतना सिद्ध करने के लिये प्रवचनसार १८९ गाथा में शुद्धनय से अर्थात् निश्चयनय से पुण्य और पाप के भाव जीव की पर्याय में हैं। पर के कारण नहीं, पर में नहीं। आहाहा! वे तो इसमें हैं, इतना सिद्ध करने के लिये (ऐसा कहा है)। निश्चय क्यों कहा? कि स्वद्रव्य में है, इसलिए निश्चय कहा। पर में है और पर के कारण से है - ऐसा अशुद्धनय का / व्यवहारनय का कथन वहाँ है। आहाहा! यहाँ जो कहना है वह तो द्रव्यदृष्टि कराने के लिये (कहा है)। आहाहा! है, वह तो पर्याय में है। उसे यहाँ तो व्यवहारनय सिद्ध करते हैं। वहाँ तो निश्चय से है - ऐसा कहा है अर्थात् इसकी पर्याय का जो भाव, उसका वह निश्चय है। पर का-जड़ का भाव, वह व्यवहार है। अपना रागादि वह निश्चय है। आहाहा! अशुद्धनिश्चय कहो परन्तु है निश्चय। वहाँ शुद्धनय लिया है, अशुद्ध नहीं लिया। ऐई! वहाँ अशुद्धनिश्चयनय नहीं लिया, शुद्धनिश्चयनय लिया है, यह अपेक्षा समझनी चाहिए न? आहाहा! है?

(प्रवचनसार, गाथा) १८९। १८९ आया न देखो, देखा? ***राग परिणाम ही आत्मा का कर्म है।*** राग, राग जिसे यहाँ पुद्गल का कहा था। आहाहा! ***राग परिणाम ही आत्मा का कर्म है, वही पुण्य-पापरूप द्वैत है, आत्मा रागपरिणाम का ही कर्ता है, उसी का ग्रहण करनेवाला है और उसी का त्याग करनेवाला है—यह, शुद्धद्रव्य का निरूपणस्वरूप निश्चयनय है।*** शुद्धद्रव्य का अर्थ कि पर्याय अपनी है न? वहाँ पर की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! शुद्धद्रव्य के... आहाहा! ***निश्चयनय मात्र स्वद्रव्य के परिणाम को बतलाता है, इसलिए उसे शुद्धद्रव्य का कथन करनेवाला कहा है, और व्यवहारनय परद्रव्य के परिणाम को आत्मपरिणाम बतलाता है, इसलिए उसे अशुद्धद्रव्य का कथन करनेवाला कहा है। यहाँ शुद्धद्रव्य का कथन एक द्रव्याश्रित परिणाम की अपेक्षा से जानना चाहिए...*** परिणाम की अपेक्षा से, हों! उस द्रव्य के परिणाम की अपेक्षा से जानना। ***अशुद्धद्रव्य का कथन एक द्रव्य के परिणाम अन्य द्रव्य में आरोपित करने की अपेक्षा से जानना चाहिए।*** ऐसी बात अब! कितने भेद पड़ते हैं! शुद्धद्रव्य के निरूपणस्वरूप निश्चयनय है - ऐसा कहा है। राग, दया, दान, पुण्य-पाप, काम-क्रोध के भाव, आत्मा की पर्याय में-स्व में होने से निश्चयनय से उसमें है - ऐसा कहा। आहाहा! वह ज्ञेय अधिकार है और ज्ञेय अधिकार है, वह सम्यग्दर्शन का अधिकार है। आहाहा!

यहाँ क्या अपेक्षा है? यहाँ तो त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द का नाथ आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का चैतन्य चिन्तामणिरत्न प्रभु है। आहाहा! उसका आश्रय करने से धर्म और सम्यग्दर्शन होता है, यह बताने के लिये पर्याय में रागादि हैं, वे सब पुद्गल के हैं-ऐसा कहकर वहाँ से लक्ष्य छुड़ाया है परन्तु व्यवहार से इसकी पर्याय में भी नहीं - ऐसा नहीं है। ऐसी बातें हैं।

जिनेन्द्रदेव का उपदेश स्याद्वादरूप समझना ही सम्यक्ज्ञान है,... देखा? आहाहा! पर्याय में है - ऐसा इसे ज्ञान भलीभाँति रखना चाहिए। आहाहा! तो उसका नाम सम्यक्ज्ञान है। यहाँ जो कहा है, वह तो त्रिकाली ज्ञायकभाव और जो उसके गुण हैं-भगवान आत्मा में अनन्त गुण अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... वे सब गुण पूर्ण हैं। गुण में अपूर्णता, आवरण और पर की अपेक्षा उनमें नहीं हो सकती। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके अनन्त गुणों का रूप अभेद, वह शुद्ध द्रव्य है और उसका आश्रय करने से ही धर्म

की पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया ? आहाहा ! यह '**भूदत्थमस्सिदो**' वहाँ आया था। आहाहा ! पर्याय में रागादि होने पर भी, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन हो, यह तीन काल-तीन लोक में नहीं है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। अब इसमें धन्धे के कारण निवृत्ति कब और इतनी सब बातें ! ऐ, देवानुप्रिया ! आहाहा ! वीतराग तीन लोक के नाथ परमेश्वर का स्याद्वाद अपेक्षा से कथन है। वे (रागादि) त्रिकाल में (त्रिकाली स्वभाव में) नहीं, इस अपेक्षा से पुद्गल के कहे; पर्याय में हैं, इसलिए इसके कहे, यह स्याद्वाद कथन है। आहाहा ! परन्तु स्याद्वाद कथन है; इसलिए आत्मा को शुभराग से भी धर्म हो और स्वभाव के आश्रय से भी हो - ऐसा नहीं है। ऐसा स्याद्वाद नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ तो शुभ को पुद्गल का परिणाम कहा। दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या, भगवान का स्मरण, भगवान की पूजा और यात्रा ये सब शुभराग हैं और ये सब यहाँ तो पुद्गल के कहे हैं, क्योंकि त्रिकाली के साथ त्रिकाल तादात्म्यसम्बन्ध है, इस अपेक्षा से कहा और पुद्गल के साथ त्रिकाल तादात्म्यसम्बन्ध है, ऐसा वास्तव में है। आहाहा ! समझ में आया ? इसलिए इसके नहीं, ऐसा कहकर, द्रव्य का आश्रय लेने के लिये पर्याय में नहीं है, इसलिए वे पुद्गल के हैं - ऐसा कहा। परन्तु पर्याय में है—ऐसा एक नय-व्यवहारनय है, उसका लक्ष्य में ज्ञान रखकर द्रव्य का आश्रय करने को कहा है। समझ में आया ? ऐसी बातें !

मुमुक्षु : आज का विषय तो सूक्ष्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विषय तो यही है बापू ! प्रभु ! क्या हो ? आहाहा ! आहाहा ! वहाँ (प्रवचनसार में) शुद्धनय-निश्चयनय से जीव में है, ऐसा कहा। वह इसकी-स्व की पर्याय है न, इसलिए निश्चय (कहा); परद्रव्य वह व्यवहार, ऐसा। वहाँ इतनी अपेक्षा ली है। यहाँ निश्चय अर्थात् त्रिकाली ज्ञायक के सम्बन्ध में वे नहीं हैं, इसलिए उन्हें पुद्गल का परिणाम कहकर, निषेध (कराकर) लक्ष्य छुड़ा दिया। आहाहा ! समझ में आया ? धीरे-धीरे (समझना) बापू ! ऐसा मार्ग ! आहाहा ! जिनेश्वर त्रिलोकनाथ जिस अपेक्षा से कहते हैं, उनकी वह अपेक्षा जाननी चाहिए। भगवान का कथन दो नय का है, आता है न ? नियमसार, पंचास्तिकाय पहली (प्रारम्भिक) गाथाओं में। भगवान का कथन दो नय का है। आहाहा ! शुरुआत में आता है पहले नियमसार और पंचास्तिकाय में। निश्चय और व्यवहार। निश्चय कथन है, वह त्रिकाल ज्ञायकभाव को बताता है; व्यवहार कथन है, वह

वर्तमान पर्याय है, रागादि है, अरे! रागादि को भी पर्याय है, ऐसा बताता है। पर्याय, वह व्यवहार है और द्रव्य, वह निश्चय है। आहाहा! पंचाध्यायी में लिया है। पर्याय है, वही व्यवहार है। आहाहा! वह राग है, वह व्यवहार है-वह तो असद्भूतव्यवहार। क्या कहा? जो राग है, वह असद्भूतव्यवहार और यहाँ तो निर्मल पर्याय प्रगट हुई है, वह सद्भूतव्यवहार है। इतने पक्ष! अरे प्रभु! क्या हो? आहाहा! यह अनादि से एकान्त में फँस गया है। प्रभु का अनेकान्त वास्तविक स्वरूप है। आहाहा! या तो द्रव्य को मानकर पर्याय को न माने, पर्याय को मानकर द्रव्य को न माने...

मुमुक्षु : यह तो अनादि का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! वेदान्त ने द्रव्य को माना, पर्याय को नहीं माना। बौद्ध ने पर्याय को माना और द्रव्य को नहीं माना। इसी तरह जैन में रहे हुए जीव, पर्याय को ही मानें तो वे बौद्ध जैसे हैं और द्रव्य को माने, पर्याय को न माने तो वे वेदान्ती जैसे निश्चय (आभासी) हैं, अज्ञानी हैं। आहाहा! शान्तिभाई!

यह तो इस आँख से मोतिया (मोतियाबिन्द) उतारने की बात है। आहाहा! प्रभु! अरे! ऐसा अवसर कहाँ मिले! आहाहा! २५-२५ वर्ष के, ३०-३० वर्ष के युवक चले जाते हैं, कोई कहीं शरण नहीं है। आहाहा! शरण (है) भगवान आत्मा, पूर्ण गुणों का पिण्ड प्रभु अन्दर,.. आहाहा! वह शरण है, वह मांगलिक है और वह उत्तम है। आहाहा! पर्याय भी शरण नहीं, मांगलिक नहीं, वह उत्तम नहीं। नहीं; फिर भी है अवश्य, आहाहा! ऐसा स्वरूप है प्रभु का।

अभी तो जगत की यह पुकार है कि शुभभाव... शुभभाव... शुभभाव... करो... करो... करो..., इससे कल्याण होगा। अर र र! यह भी मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा! तथा द्रव्य में भी नहीं और पर्याय में भी नहीं, यह भी मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा! एकान्त आया है न अन्त में? सर्वथा एकान्त, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! पण्डित जयचन्दजी ने भी... उस समय के पण्डित भी... आहाहा!

'जहाँ जहाँ जो जो योग्य है, वहाँ समझना वही;
वहाँ वहाँ वह वह आचरे आत्मार्थीजन सही' (श्रीमद् राजचन्द्र)

आहाहा ! आहाहा ! देह छूटने पर राग और देह की एकता होगी, वह दब जायेगा-मर जायेगा। प्रभु ! आहाहा ! आहाहा ! और यहाँ जिसे मरण के अन्तिम भाव रहे, उस भाव का फल उसे भविष्य में मिलेगा। है ? वर्तमान तो मिला है परन्तु उसका फल भविष्य में अवतार होगा। आहाहा ! यहाँ करोड़पति-अरबोंपति सेठ हो और जिसे राग तथा देह की एकता है, वह मरकर कौवे-कुत्ते में जायेगा।

अर र र! बापू, प्रभु ! ऐसे अवतार अनन्त बार किये हैं। भाई ! तुझे पता नहीं। आहाहा ! यहाँ खम्मा.. खम्मा क्षण देवों में होता हो... ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, जिसे मणिरत्न के पलंग, ढोलिया (पलंग का गुजराती शब्द) क्या कहलाता है वह ? पलंग, उसमें सोता था। सोलह हजार देव सेवा करते, ९६ हजार स्त्रियाँ आहाहा ! वह मरकर, देह छूटकर सातवें नरक गया बापू ! जिसके क्षण के दुःख करोड़ों भव और करोड़ों जीभों से नहीं कहे जा सकते—ऐसे दुःख एक क्षण के हैं, ऐसे तैंतीस सागर के (दुःख) प्रभु ! वह क्या होगा ? आहाहा ! उसमें भी जीव अनन्त बार गया है, प्रभु ! आत्मा के ज्ञान बिना, और सम्यग्दर्शन के बिना मिथ्यात्व के कारण... आहाहा ! ऐसे अनन्त भव किये हैं, प्रभु ! आहाहा ! भूल गया, इसलिए नहीं थे - ऐसा कैसे कहा जाये ? प्रभु ! आहाहा ! जन्म लेने के पश्चात् छह महीने में-बारह महीने में क्या हुआ, पता है ? इसकी माता ने कैसे पिलाया, कहाँ सुलाया, पता है ? पता नहीं, इसलिए नहीं था - ऐसा इसे कौन कहे भाई ? आहाहा ! ऐसे अनन्त-अनन्त भव तुझ पर बीत गये, नाथ ! पता नहीं, इसलिए वे नहीं थे-ऐसा कैसे कहा जाये भाई ! आहाहा ! इस भवभ्रमण को मिटाने का उपाय यहाँ बताते हैं कि वस्तु जो भगवान आत्मा निश्चय वस्तु है, उसमें वे (रागादि) पुद्गल के परिणाम गिनकर उसमें नहीं—ऐसा त्रिकाली का आश्रय कराने के लिये और त्रिकाली के आश्रय से धर्म / सम्यक् (दर्शन) होता है, इसलिए कहा परन्तु इसके लक्ष्य में रहना चाहिए कि पर्याय में रागादि है। पुद्गल के ही हैं—ऐसा जो कहा था, वह व्यवहार मुझमें है, ऐसा इसे जानना चाहिए। देवीलालजी ! आहाहा ! यह एकान्त मान लिया जाये और व्यवहार से धर्म होता है, यह भी एकान्त मिथ्यात्व है। समझ में आया ? आहाहा ! और पर्याय में रागादि नहीं हैं, यह भी एकान्त मिथ्यात्व है। आहाहा ! यह गाथा पूरी हुई।

गाथा ६१

कुतो जीवस्य वर्णादिभिः सह तादात्म्यलक्षणः सम्बन्धो नास्तीति चेत्–

तत्थ भवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादी।
संसारपमुक्काणं णत्थि हु वण्णदओ केई।।६१।।

तत्र भवे जीवानां संसारस्थानां भवंति वर्णादयः।
संसारप्रमुक्तानां न सन्ति खलु वर्णादयः केचित्।।

यत्किल सर्वास्वप्यवस्थासु यदात्मकत्वेन व्याप्तं भवति तदात्मकत्वव्याप्तिशून्यं न भवति तस्य तैः सह तादात्म्यलक्षणः सम्बन्धः स्यात्। ततः सर्वास्वप्यवस्थासु वर्णाद्यात्मकत्वव्याप्तस्य भवतो वर्णाद्यात्मकत्वव्याप्ति शून्यस्याभवतश्च पुद्गलस्य वर्णादिभिः सह तादात्म्यलक्षणः सम्बन्धः स्यात्। संसारावस्थायां कथंचिद्वर्णाद्यात्म-कत्वव्याप्तस्य भवतो वर्णाद्यात्मकत्वव्याप्तिशून्यस्याभवतश्चापि मोक्षावस्थायां सर्वथा वर्णाद्यात्मकत्वव्याप्तिशून्यस्य भवतो वर्णाद्यात्मकत्वव्याप्तस्याभवतश्च जीवस्य वर्णादिभिः सह तादात्म्यलक्षणः सम्बन्धो न कथंचनापि स्यात्।

अब यहाँ प्रश्न होता है कि वर्णादि के साथ जीव का तादात्म्यलक्षण सम्बन्ध क्यों नहीं है ? उसके उत्तरस्वरूप गाथा कहते हैं —

संसारी जीव के वर्ण आदिक, भाव हैं संसार में।
संसार से परिमुक्त के नहिं, भाव को वर्णादिके ॥६१॥

गाथार्थ - [वर्णादयः] जो वर्णादिक हैं वे [संसारस्थानां] संसार में स्थित [जीवानां] जीवों के [तत्र भवे] उस संसार में [भवन्ति] होते हैं और [संसार प्रमुक्तानां] संसार से मुक्त हुए जीवों के [खलु] निश्चय से [वर्णादयः केचित्] वर्णादिक कोई भी (भाव) [न सन्ति] नहीं हैं; (इसलिए तादात्म्यसम्बन्ध नहीं हैं)।

टीका - जो निश्चय से समस्त ही अवस्थाओं में यद्-आत्मकपने से अर्थात् जिसस्वरूपपने से व्याप्त हो और तद्-आत्मकपने की अर्थात् उस स्वरूपपने की व्याप्ति से रहित न हो, उसका उनके साथ तादात्म्यलक्षण सम्बन्ध होता है। (जो वस्तु सर्व अवस्थाओं में जिस भावस्वरूप हो और किसी अवस्था में उस भावस्वरूपता को न छोड़े, उस वस्तु का उन भावों के साथ तादात्म्यसम्बन्ध होता है।) इसलिए सभी अवस्थाओं में जो वर्णादिस्वरूपता से व्याप्त होता है और वर्णादिकस्वरूपता की व्याप्ति से रहित नहीं होता, ऐसे पुद्गल का वर्णादिभावों के साथ तादात्म्यलक्षण सम्बन्ध है और यद्यपि संसार अवस्था में कथंचित् वर्णादिस्वरूपता से व्याप्त होता है तथा वर्णादिस्वरूपता की व्याप्ति से रहित नहीं होता, तथापि मोक्ष अवस्था में जो सर्वथा वर्णादिस्वरूपता की व्याप्ति से रहित होता है और वर्णादिस्वरूपता से व्याप्त नहीं होता—ऐसे जीव का वर्णादि भावों के साथ किसी भी प्रकार से तादात्म्यलक्षण सम्बन्ध नहीं है।

भावार्थ - द्रव्य की सर्व अवस्थाओं में द्रव्य में जो भाव व्याप्त होते हैं, उन भावों के साथ द्रव्य का तादात्म्यसम्बन्ध कहलाता है। पुद्गल की सर्व अवस्थाओं में पुद्गल में वर्णादि भाव व्याप्त हैं, इसलिए वर्णादि भावों के साथ पुद्गल का तादात्म्यसम्बन्ध है। संसारावस्था में जीव में वर्णादि भाव किसी प्रकार से कहे जा सकते हैं किन्तु मोक्ष अवस्था में जीव में वर्णादि भाव सर्वथा नहीं हैं, इसलिए जीव का वर्णादि भावों के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध नहीं है, यह बात न्यायप्राप्त है।

गाथा - ६१ पर प्रवचन

अब यहाँ प्रश्न होता है कि वर्णादि... वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, गुणस्थान भेद **के साथ जीव का तादात्म्यलक्षण सम्बन्ध क्यों नहीं है ?** अब क्या कहते हैं ! भगवान जो पूर्ण गुण का अभेद द्रव्यस्वभाव वस्तु, भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहे। आहाहा ! ऐसे जो आत्मा में पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... जीवत्वशक्ति पूर्ण, चितिशक्ति पूर्ण, दृशिशक्ति पूर्ण, ज्ञानशक्ति पूर्ण। आहाहा ! सुखशक्ति पूर्ण, वीर्यशक्ति पूर्ण, प्रभुत्वशक्ति पूर्ण, विभुत्वशक्ति पूर्ण, सर्वज्ञ-सर्वदर्शि शक्ति पूर्ण—ऐसे-ऐसे अनन्त गुण,

पूर्ण प्रभु में हैं। उन अनन्त पूर्ण गुणों का रूप, वह स्वद्रव्य है। आहाहा! उसमें ये सब नहीं ऐसा कहकर स्वद्रव्य का आश्रय कराया है। समझ में आया?

इसके जो त्रिकाली गुण और द्रव्य में तादात्म्यसम्बन्ध है अर्थात् क्या? जैसे अग्नि को और उष्णता को तद्रूप-तादात्म्यसम्बन्ध है, वैसे आत्मा को और ज्ञान-दर्शन-आनन्द गुणों को तादात्म्यसम्बन्ध है परन्तु इन रागादि के परिणाम को तादात्म्यसम्बन्ध त्रिकाल, जैसे दो का एकरूप सम्बन्ध है, वैसा पुण्य-पाप, दया-दान और गुणस्थान भेद का तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है। इतना बताने को यहाँ पर के कहे हैं। आहाहा!

आहाहा! भगवान का विरह पड़ा, पंचम काल में; केवलज्ञान की दशा रही नहीं और ऐसी बात समझने के लिये बहुत दुष्करता लगे परन्तु यह समझी जा सके, ऐसी इसकी चीज़ है। आहाहा! आहाहा! '**येन वातापि हि श्रुता**' अध्यात्म की ऐसी बात भी जिसने '**श्रुता**' सुनी है-जिसने रुचिपूर्वक (सुनी है) वह भविष्य में '**भाविनिर्वाणभाजनम्**' आहाहा!

जिसे द्रव्य पर नजर लगी है, ऐसा अखण्डानन्द हूँ, रागादि नहीं, पुण्य आदि नहीं। आहाहा! बापू! आहाहा! ऐसे जो संस्कार अन्दर पड़ते हैं न? आहाहा! रुचिपूर्वक, हों! अपने लिये.. आहाहा! कहते हैं कि वह '**भाविनिर्वाणभाजनम्**' वह भविष्य काल में सर्वज्ञ होनेवाला है। आहाहा! वह भविष्य में सिद्ध की पर्याय का पात्र हो जानेवाला है। आहाहा!

अरे! ऐसी बात भाई! आहा! यहाँ यह कहते हैं ये वर्णादि अथवा रागादि और पुण्य-पाप के भाव, गुणस्थान के भाव को जीव के साथ तादात्म्यसम्बन्ध क्यों नहीं है? भगवान आत्मा के साथ तद्रूप—जैसे अग्नि और उष्णता—वैसा सम्बन्ध क्यों नहीं है? समझ में आया? और तुमने इन्हें पुद्गल के परिणाम कहे और आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं है - ऐसा कहा। उसका उत्तर **(गाथा कहते हैं—)** उसका उत्तर अर्थात्? जिसे ऐसी जिज्ञासा से प्रश्न उठा है, उसे उत्तर दिया जाता है। आहाहा! जिसे अन्दर से प्रश्न उठा है, प्रभु! आप जब राग-द्वेष और गुणस्थान भेद तथा भगवान आत्मा के साथ तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है और तादात्म्यसम्बन्ध तो पुद्गल के साथ है - ऐसा प्रभु! आपने कहा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वह क्यों नहीं? प्रभु! क्यों नहीं? मुझे प्रश्न उठता है। शंका नहीं

परन्तु आशंका (है कि) मुझे समझ में नहीं आता। आहाहा! ऐसा शिष्य का समझने के लिये जिज्ञासा का प्रश्न है, उसे उत्तर दिया जाता है। ऐसा कहकर यों ही सुनने के लिये बैठे और समझना नहीं और अन्तर में यह धगश नहीं, उसके लिये यह उत्तर नहीं है, कहते हैं। आहाहा!

आहाहा! क्या अमृतचन्द्राचार्य! क्या कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त!! आहाहा! केवलज्ञानी का विरह भुलाया, ऐसी बातें हैं! आहाहा! मानो साक्षात् भगवान कहते हों, ऐसी बात है। इस प्रकार शिष्य के मुख में (प्रश्न डालकर) ऐसा कहलवाया स्वयं ने कि जिस शिष्य को ऐसा होता है कि प्रभु! ये राग-द्वेष, पुण्य-पाप, गुणस्थान के भेद वे आत्मा के साथ तादात्म्य त्रिकाल सम्बन्ध नहीं और उनका सम्बन्ध पुद्गल के साथ है, पुद्गल के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है। आहाहा! प्रभु! वह सम्बन्ध क्यों नहीं है? उसका उत्तर कहा जाता है।

तत्थ भवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादी।
संसारपमुक्काणं णत्थि हु वण्णदओ केई।।६१।।

संसारी जीव के वर्ण आदिक, भाव हैं संसार में।
संसार से परिमुक्त के नहिं, भाव को वर्णादिके।।६१।।

देखो, ये वचन देखो! रागादि सब, हों! सब २९ बोल लेना। आहाहा! इसलिए तादात्म्यसम्बन्ध नहीं - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तादात्म्यसम्बन्ध हो तो छूटे नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं?

टीका - जो निश्चय से समस्त ही अवस्थाओं में यद्-आत्मकपने से अर्थात् जिसस्वरूपपने से... अर्थात् जिस स्वरूपपने से देखा? **व्याप्त हो.... जो निश्चय से समस्त ही अवस्थाओं में...** व्याप्त हो, किसी अवस्था में न हो, ऐसा नहीं। ऐसे लॉजिक-न्याय रखकर बात करते हैं। आहाहा! करुणाबुद्धि से जगत के लिये प्रसिद्ध करते हैं, प्रभु! तूने तेरी करुणा नहीं की, नाथ! आहाहा! तू पूर्णानन्द का नाथ, तेरे साथ उनका सम्बन्ध नहीं। यदि सम्बन्ध हो तो मुक्ति में भी-मुक्ति हो वहाँ भी रहना चाहिए। मुक्ति हो, वहाँ वे नहीं रहते; इसलिए तेरे त्रिकाल के साथ उनका सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! यह स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब

की बात नहीं, हों! यहाँ। यह तो इसकी पर्याय में निमित्त के सम्बन्ध से नैमित्तिकदशायें होती हैं, वे इसके त्रिकाली सम्बन्ध में नहीं हैं। आहाहा! आहाहा! क्योंकि यदि त्रिकाली सम्बन्ध हो तो मुक्त होने पर भी वहाँ रहना चाहिए। आहाहा! यह यहाँ कहा है।

जो निश्चय से समस्त ही अवस्थाओं में यद्-आत्मकपने से अर्थात् जिसस्वरूपपने से व्याप्त हो और तद्-आत्मकपने की अर्थात् उस स्वरूपपने की व्याप्ति से रहित न हो,... उसकी उस अवस्था में से रहित न हो, प्रत्येक अवस्था में हो और किसी भी अवस्था में न हो-ऐसा न हो। **उसका उनके साथ तादात्म्यलक्षण सम्बन्ध होता है।** प्रत्येक अवस्था में हो और किसी भी अवस्था बिना न हो, उसे यहाँ तादात्म्यसम्बन्ध कहते हैं। अरे... ऐसे वचन। इसका अर्थ किया कोष्ठक में किया। **(जो वस्तु सर्व अवस्थाओं में जिस भावस्वरूप हो...)** पर्याय में। **सर्व अवस्थाओं में जिस भावस्वरूप हो और किसी अवस्था में उस भावस्वरूपता को न छोड़े, उस वस्तु का उन भावों के साथ तादात्म्य -सम्बन्ध होता है।)** आहाहा! ऐसा है। बनियों को ऐसा समझना, भाई!

क्या कहा? जो द्रव्य की प्रत्येक अवस्था में हो और उसकी किसी भी अवस्था में न हो (-ऐसा न हो) उसे तादात्म्यसम्बन्ध कहते हैं। यह तो अवस्था-संसार अवस्था में है और मोक्ष अवस्था में नहीं, इसलिए तादात्म्यसम्बन्ध है नहीं, आहाहा! यहाँ तो वे वकील कानून निकालते हैं न, वैसे कानून हैं ये सब। आहाहा! भगवान तीन लोक के नाथ, सन्तों द्वारा यह बात कहलवाते हैं, आहाहा! कि भाई! जो वस्तु है, उसकी प्रत्येक अवस्था में हो और किसी भी अवस्था में न हो, ऐसा न हो, उसे तादात्म्यसम्बन्ध कहते हैं, तो विकार आदि भाव, संसार अवस्था में है परन्तु मुक्ति अवस्था में नहीं; इसलिए उन्हें तादात्म्यसम्बन्ध है नहीं। आहाहा! सुमनभाई! आहाहा! ऐसी गाथाएँ सूक्ष्म। आहाहा!

इसलिए सभी अवस्थाओं में जो वर्णादिस्वरूपता से व्याप्त होता है... आहाहा! **और वर्णादिकस्वरूपता की व्याप्ति से रहित नहीं होता, ऐसे पुद्गल का वर्णादिभावों के साथ तादात्म्यलक्षण सम्बन्ध है...** आहाहा! यहाँ तो पर्याय में है, परन्तु त्रिकाल तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक अवस्था में नहीं होते परन्तु पुद्गल की अवस्था में तो प्रत्येक में वे ही होते हैं, कहते हैं। भेदरूपी आदि गुणभेद, वे सब पुद्गल की अवस्था में होते हैं और पुद्गल की अवस्था से रहित नहीं होते। आहाहा! गजब काम किया है न?

आहाहा! यह शुभराग है, यह आया, रागादिस्वरूपपने का सम्बन्ध है और व्याप्ति से रहित होता नहीं। सर्व अवस्था में होता है, यह वणादिस्वरूपपने से व्याप्त पुद्गल और वर्णादिस्वरूपपने की व्याप्ति से रहित नहीं होता ऐसे पुद्गल, उस पुद्गल के साथ उन्हें तादात्म्यसम्बन्ध है - ऐसा कहते हैं। ऐ! क्योंकि निमित्तनिमित्तसम्बन्ध, वह पुद्गल के साथ हुआ, इन दोनों का सम्बन्ध जानकर इन्हें पुद्गल गिना। आहाहा! पुद्गल जो जड़कर्म है, वह निमित्त है परन्तु उसके लक्ष्य से इसे यह नैमित्तिकदशा हुई, वे सब दशायें पुद्गल के साथ तादात्म्य है - ऐसा कहा। आहाहा! सूक्ष्म तो है भाई! आहाहा! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! यह वीतराग के अतिरिक्त कहीं ऐसी बात जिनेन्द्र के अतिरिक्त कहीं नहीं होती। आहाहा!

सन्त, करुणा से जगत के लिये प्रसिद्ध करते हैं। प्रभु! ये गुणस्थान भेद, यह राग, दया, दान के परिणाम, ये पुद्गल के साथ व्याप्त हैं और पुद्गल से व्याप्त (हों वे) कभी पुद्गल... रहित नहीं होते। आहाहा! त्रिकाली द्रव्यस्वभाव के साथ सम्बन्ध नहीं परन्तु पुद्गल के साथ कायम सम्बन्ध है, इसलिए जहाँ-जहाँ पुद्गल-निमित्त है, वहाँ वहाँ नैमित्तिक अवस्था, उसके साथ सम्बन्ध है। आहाहा! गजब बात की है न! इसकी एक लाईन-एक कड़ी, बापू! समझना भारी। आहाहा! यह तो भागवत् शास्त्र, भगवान परमात्मा का कहा हुआ, त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में आया, वह यह सन्त वाणी में कहते हैं। आहाहा! भाई! तूने जो प्रश्न किया कि पुण्य और पाप, दया और दान आदि तथा गुणस्थान भेद जीव के साथ तादात्म्यसम्बन्ध क्यों नहीं है? ऐसा तूने पूछा तो उसका उत्तर ऐसा कहते हैं कि आत्मा को प्रत्येक जो जिसकी अवस्था में प्रत्येक अवस्था में हो और कोई भी अवस्था उनके बिना न हो, उसे तादात्म्यसम्बन्ध कहते हैं तो यह पुद्गल की अवस्था है और पुद्गल की अवस्था बिना नहीं होते ये कोई, इसलिए पुद्गल के हैं। पुद्गल के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है। आहाहा! आत्मा के साथ एक समय का-एक समय का अनित्य सम्बन्ध है, उसे यहाँ गौण करके पर के साथ तादात्म्य सम्बन्ध है - ऐसा सिद्ध किया है। क्या कहा? कि इस पर्याय में एक समय का है, यह तो सिद्ध किया परन्तु एक समय का जो है, वह कर्म का जो जड़भाव निमित्त है, उसके सम्बन्ध में वह है। इसलिए जहाँ-जहाँ

पुद्गल, वहाँ-वहाँ वह और जहाँ-जहाँ पुद्गल नहीं, वहाँ-वहाँ वह नहीं। आहाहा! यह सूक्ष्म तो है भाई! वीतरागमार्ग बापू! सूक्ष्म बहुत भाई! आहाहा! जन्म-मरण करके यह महा दुःखी है, इसे पता नहीं है। आकुलता की अग्नि से सुलग रहा है, भाई! आहाहा!

शान्तस्वभाव भगवान आत्मा के साथ, भगवान आत्मा को तादात्म्यसम्बन्ध है परन्तु उसका भान नहीं और जिसके साथ-पुद्गल के साथ तादात्म्यसम्बन्ध, उसके परिणाम को अपना मानकर, आहाहा! और अग्नि—कषाय की अग्नि—से दुःखी / सुलग रहा है। आहाहा! इसका इसे पता भी नहीं। यह यहाँ कहते हैं-कषाय की अग्नि से सुलग रहा है। आहाहा! उस पुद्गल की पर्याय को पुद्गल के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है और उसके सम्बन्ध बिना वह पुद्गल नहीं होता। आत्मा के साथ प्रत्येक अवस्था में हो और किसी अवस्था में न हो, वह उसके साथ तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसे लॉजिक से-न्याय से तो बात करते हैं। आहाहा!

वर्णादिकस्वरूपता की व्याप्ति से रहित नहीं होता, ऐसे पुद्गल का वर्णादिभावों के साथ... आहाहा! वे संयमलब्धिस्थान, शुभभाव, गुणस्थान, जीवस्थान, ये मार्गणास्थान.. आहाहा! यह सब तादात्म्यलक्षण सम्बन्ध एक संसार अवस्था में। **यद्यपि संसार अवस्था में कथंचित् वर्णादिस्वरूपता से व्याप्त होता है...** जीव पर्याय में, संसार अवस्था में **वर्णादिस्वरूपता की व्याप्ति से रहित नहीं होता, तथापि मोक्ष अवस्था में जो सर्वथा वर्णादिस्वरूपता की व्याप्ति से रहित होता है...** आहाहा! इन भेदभावों से भी मोक्ष अवस्था में तो रहित है। आहाहा! संहनन की जड़ की पर्याय से रहित है, गुणस्थान के भेद से रहित है और जीव के गुण की जो भेद अवस्था है, उससे भी यह तो रहित है। आहाहा! **सर्वथा वर्णादिस्वरूपता की व्याप्ति से रहित होता है...** सर्वथा, देखा? कहाँ? मोक्ष अवस्था में; और **वर्णादिस्वरूपता से व्याप्त नहीं होता, ऐसे जीव का वर्णादि भावों के साथ तादात्म्य सम्बन्ध किसी भी प्रकार से...** किसी भी प्रकार से नहीं है। क्या कहा यह? कि भगवान आत्मा को संसार अवस्था में पर्याय में उसकी अवस्था का सम्बन्ध है परन्तु जहाँ मोक्ष अवस्था होती है, तब वह सम्बन्ध नहीं रहता, इसलिए उसकी प्रत्येक अवस्था में सम्बन्ध हो, वह उसका लक्षण तादात्म्य कहलाता है, जब प्रत्येक अवस्था में ये नहीं;

इसलिए इनका तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है। आहाहा! कहो, नटुभाई! यही तुम्हारी वकालात का यह तो चलता है सब। यह तो वीतराग की वकालात है। आहाहा!

भाई! तादात्म्यसम्बन्ध उसे कहते हैं कि प्रत्येक अवस्था में हो और किसी अवस्था में न हो (-ऐसा न हो), उसे तादात्म्य अवस्था कहा जाता है। अत: रागादि के भाव को जीव के साथ संसार में कथंचित् (सम्बन्ध है) परन्तु मोक्ष अवस्था में नहीं, इसलिए तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है, आहाहा! और इसलिए तो उस पुद्गल के साथ तादात्म्यसम्बन्ध ले लिया। इसके (जीव के) साथ अनित्य है, उसके साथ नित्य है। आहाहा! क्या कहा यह? रागादि-गुणस्थान भेद एक समय की अवस्था में संसार अवस्था में अनित्य सम्बन्ध है, संयोग सम्बन्ध अनित्य एक समय का है और पुद्गल के साथ इनका कायम सम्बन्ध है-ऐसा कहा। जहाँ-जहाँ पुद्गल निमित्त है, वहाँ-वहाँ उसका नैमित्तिकभाव, उसके साथ होता है - ऐसा कहा है। आहाहा!

अरे, ऐसी बात! परन्तु क्या कहने की पद्धति! है? आहाहा! तादात्म्यसम्बन्ध क्यों नहीं-ऐसा अभी शिष्य का प्रश्न था, उसका यह उत्तर दिया कि तादात्म्यसम्बन्ध उसे कहते हैं कि जो वस्तु के साथ में प्रत्येक अवस्था में हो, किसी भी अवस्था में न हो, उसे तादात्म्यसम्बन्ध नहीं कहते। प्रत्येक अवस्था में हो, उसे तादात्म्यसम्बन्ध (कहते हैं)। इसे तो-संसार अवस्था में तो यह राग-द्वेष और गुणस्थान भेद की अवस्था है परन्तु मोक्ष अवस्था में ये नहीं; इसलिए तादात्म्यसम्बन्ध नहीं। तादात्म्यसम्बन्ध हो तो नित्य रहना चाहिए परन्तु पुद्गल के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है। आहाहा! क्योंकि उस निमित्त के आश्रय से-लक्ष्य से भेद पड़े हैं सब रागादि। यह जहाँ-जहाँ है, वहाँ-वहाँ भेद है-पुद्गल के साथ सम्बन्ध है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अब ऐसी बात। यह घर में समझे तो ऐसा समझ में नहीं आता। ऐ ई... देवानुप्रिया! ऐसा सूक्ष्म है, यह तो। यह तो क्या दो-चार दिन आवे सूँघने, यह कहता है न सुँघने आता हूँ। नेवला लड़े तो सर्प के साथ, फिर जाये वहाँ वनस्पति सूँघने। नेवले का आता है, ऐसा यह दृष्टान्त देते हैं। भाई! वीतराग का मार्ग प्रभु अलौकिक मार्ग है भाई! अरे! जिसे सुनने को भी नहीं मिले, बेचारे को, वह क्या करे? आहाहा! कहते हैं ऐसा मार्ग है। आत्मा के

साथ प्रत्येक अवस्था में हो तो तादात्म्य आत्मा के साथ प्रत्येक अवस्था में नहीं, तब पुद्गल की अवस्था में-प्रत्येक अवस्था में है। आहाहा! जहाँ-जहाँ निमित्त पुद्गल है, वहाँ-वहाँ उसके सम्बन्ध में भेदभाव आदि वहाँ होते हैं। आहाहा! इसलिए उन्हें पुद्गल के साथ सम्बन्ध कहा है; आत्मा के साथ सम्बन्ध है नहीं।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)